रविवार, दिनाँक 21-05-2023 को सत्संग में हुए वचनों का संक्षिप्त विवरण

मेरा साजन प्यारा मीत है, मीतों से बढ़कर मीत है

मेरा साजन प्यारा हो, हो, हो।

मैंने उन संग जोड़ी प्रीत है, प्रीतों से बढ़कर प्रीत है

मेरा साजन प्यारा हो, हो, हो।

सजनों अब हम सबको सुमति में आना है और कुमति छोड़नी है। यहाँ जानो कि कुमति और सुमति में फर्क होता है। जो सुमतिवान होता है वह जो भी बोलता है, अपना आत्म-निरीक्षण करते हुए सत्य बात ही बोलता है। इस सत्य को याद रखते हुए हमें समझना है कि जो भी हम दिनचर्या के दौरान बोलते हैं, क्या हम वैसा वास्तविक रूप से करते भी हैं? आशय यह है कि क्या हमारा ख़्याल/सुरत सक्रिय है और हमारा आत्म नियन्त्रण समुचित रूप से जैसा होना चाहिए, वैसा ही है? इस सन्दर्भ में हमारे कहने का आशय यह है कि जैसे अभी आप बोल रहे थेः-

मेरा साजन प्यारा मीत है, मीतों से बढ़कर मीत है

मैंने उन संग जोड़ी प्रीत है, प्रीतों से बढ़कर प्रीत है

तो क्या आपने यह बोलते समय आत्म-निरीक्षण किया कि क्या हम जो कह रहे हैं ''मीतों से बढ़कर मीत है'' हक़ीकत में हम वैसा ही मानते हैं?

''मौन''।

सजनों यह धोखा है क्योंकि जो आप बोल रहे हो, जब दूसरे सजन उसके विपरीत आपका व्यवहार देखेंगे तो उनका आपके प्रति जो विश्वास है वह मज़बूत नहीं रह पाएगा और उन्हें लगेगा कि इनकी कथनी कुछ है और करनी कुछ है। याद रखो हमारी कथनी व करनी सदा समरस होनी चाहिए। अन्य शब्दों में साजन, ब्रह्म आद् अक्षर, अमर-अजर आत्मा में जो परमात्मा है, उनके संग आपकी प्रीत निर्मल होनी चाहिए। इस निर्मल प्रीत को सत्यता

से ही धारण करना है और फिर तद्नुरूप उसका वर्ताव करने में ही अपनी शान समझो। यही इन्सानियत की पहचान है। इस सन्दर्भ में अब अपनी परख करो कि क्या आपकी सुरत जिस साजन परमेश्वर से प्रीत करती है, उन संग हर क्षण बनी रहती है?

''मौन''।

सजनों यदि ऐसा होता तो आत्मज्ञान आपके हृदय में उजागर हो गया होता और आप सुमतिवान होते यानि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आपकी सुरत को छू भी न पाते। सजनों विकारों का हमारे मन में न उपजना ही निर्मल प्रीत की निशानी है। इसके विपरीत यदि मन में विकार उपजने लगते हैं तो यह निशानी है - इन्द्रियों के कामयुक्त होने की और कामनायुक्त होकर जीवन यापन करने की। ऐसा ही सजनों हम, आप करते हैं और अपने बच्चों की पालना भी वैसे ही बुरे भावों के अनुसार करते हैं। तो क्या आपको, जिस खातिर परमात्मा ने जीवन दिया है, उसके विपरीत चलते हुए शर्म नहीं आती? कभी तो आपको इस सन्दर्भ में विचार करना चाहिए कि हम किसके विचारों के विपरीत चल रहे हैं? - उस ईश्वर के सद्-विचारों के विपरीत जो हमारी जीवन-शक्ति है और सुमतिवान होने का आधार है। सजनों यह खोट है। यही खोट हम आने वाली सन्तानों में भर रहे हैं क्योंकि वे नादान तो जैसा अपने माता-पिता को बोलते व करते देखते हैं वैसे ही चातुरता से परिपूर्ण आचरण को ग्रहण कर तद्नुकूल व्यवहार दर्शाते हैं। अब जब वे हमारे साथ दुराचरण करें तो हमें अच्छा नहीं लगता परन्तु जब हम ईश्वर की आज्ञा के विपरीत आचरण दर्शाते हैं तो किसे अच्छा लगता है? हमें कोई पूछने वाला नहीं है इसलिए हम वैसा ही करते जाते हैं। यहाँ हमें बताओ कि जब सुरतों का मालिक एक है तो आप अपने बच्चों को संसारी ज्ञान देने वाले कैसे उनके मालिक बन गए हो? किस हक़ से अपने बच्चों को अज्ञानमय अवस्था में साध रहे हो? जानो यह कुदरत के नीति-नियमों के विरुद्ध चलने की आदत, जो संसार के तकरीबन हर मानव को पड़ गई है, वह अब ज्यादा देर नहीं चलने वाली क्योंकि कुमतिवान की बुद्धि विनाशकारी हो जाती है। ऐसा मानव जब दूसरों का विनाश करता जाता है, एक दिन वही विनाश उस पर या उसके अपनों पर आ गिरता है। सो यह बात कुदरत के इस नियम को ज़ाहिर करती है ''जैसा करोगे वैसा भरोगे''। वैसे भी आप देखो कि जब हम दीवार पर गेन्द मारते हैं तो वही गेन्द हम तक वापिस आती है। इसी तरह हम जब दूसरों की निन्दा करते है तो वह निन्दा हम तक वापिस आती है जो कि अपने आप में मानवता खो बैठने की निशानी होती है। यह सुरत के कमज़ोर होने या मायाजाल में फँसे रहने की बात होती है। ऐसा न हो इस हेतु सजनों आत्मज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता होती है।

सजनों सुरत जब अन्तर्ज्ञान प्राप्त कर आत्म-स्वरूप हो जाती है तो फिर मायाजाल न अन्दर रहता है, न बाहिर। इस तरह दोनों वृत्तियाँ सम हो जाती हैं और हृदय में सब कुछ सीधा व स्पष्ट सत्य के रूप में प्रगट हो जाता है। आशय यह है कि तब हम सत्य को जानने पहचानने में सक्षम हो जाते हैं। यह सक्षमता दर्शाती है कि हमारी प्रीत अपने साजन मीत के संग पक्की है व अखण्ड है। जब सुरत की प्रीत इस सुन्दर अवस्था को प्राप्त हो जाती है तो इस संसार में कोई भी उसका बाल बाँका नहीं कर पाता। यह है यथार्थ और श्रेष्ठ मानव की वास्तविक पहचान। हम पूछते हैं कि क्योंकर सत्संग में आने के पश्चात भी विनाश-पथ पर चल रहे हो? क्योंकर जिन संस्कारों से आप अपरिचित रहे और जीवन में नादानियाँ करते रहे व दुःख भोगते रहे, वही संस्कार अपने बच्चों के भी बना रहे हो? क्या यही ईश्वर की दात/कृपा की कद्र व सम्मान करने का प्रतीक है? क्योंकर अपने घर आए जीव के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन ठीक से न करते हुए उससे धोखा कर रहे हो? कैसे माँ-बाप हो आप? इस संदर्भ में सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि इस अवस्था से उबरने के लिए भगत शिरोमणि सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की युक्तियों को तहे दिल से सहर्ष स्वीकारो और फिर तद्नुरूप ही हर पहलू से अपना स्वाभाविक चारित्रिक रूप बनाओ। इस तरह पुनः अपनी प्रीत की निर्मलता व एकरूपता धारकर जीवन के वास्तविक परम आनन्द का अनुभव करो और ब्रह्म नाम कहाओ। इसी सन्दर्भ में अब ध्यान से भजन सुनो और ख़बरदार रहो कि जो भी गाया जाए उसे स्मृति में धारना है। जानो यही युक्ति है जिसके द्वारा सहज ही आत्म-सुधार हो सकता है।

दासी दे हृदय पोंदी ए ठंड, महाबीर जी दे चरणां नू देख के।

चरणां नू देख के प्यारे प्यारे चरणां नू देख के।।

दासी दे हृदय पोंदी ए ठंड, महाबीर जी दे चरणां नू देख के।।

महाबीर जी दे चरण प्यारे, सारी सृष्टि दे हैन सहारे।

दासियां नू तारन वाले, प्यारे प्यारे चरणां नू देख के।।

जेहड़ियां महाबीर जी दा नाम ध्यावन, महाबीर रघुनाथ जी दे चरण दिखावन।

दासियां दी आस पुजावन, प्यारे तेरे चरणां नू देख के।।

ओ हिन मेरे गदाधारी, दासियां ते मेहर कीती हिने भारी।

दासी चरणां तों जावे बलिहारी, प्यारे तेरे चरणां नू देख के।।

शास्त्र महाबीर जी दा रस्ता बतावन, महाबीर जी रघुनाथ जी दी चरणी बहलावन।

भवसागर पार लंघावन, प्यारे प्यारे चरणां नू देख के।।

सांवले चरणां दे विच बहलावन, मस्ताना मस्ती दिखावन।

दासियां दे सारे कष्ट मिट जावन, प्यारे प्यारे चरणां नू देख के।

ऋषि मुनि वी नाम ध्यावन, बली जी दी लीला दा अन्त न पावन।

दासियां नू अचरज खेल दिखावन, प्यारे तेरे चरणां नू देख के।।

दासी चरणां तों जावे बलिहारी, महाबीर जी भक्त हितकारी।

दासियां दी किश्ती पार उतारी, प्यारे प्यारे चरणां नू देख के।।

सजनों जब सच्चेपातशाह जी का भी मन/हृदय उचित पालना के अभाव में या शारीरिक सम्बन्धों के कारण या फिर बाल-अवस्था के प्रचलित भक्ति-भावों के कारण उत्पन्न हुए तीनों तापों से संतप्त रहा तो उन्होंने भी अपनी सुरत को इन सबकी तरफ से यानि संसार की तरफ से पलटा खवाकर बड़े आत्म-विश्वास के साथ सबसे श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के साथ जोड़ दिया। इस तरह उन्होंने उस सर्वमहान दाता द्वारा प्रदत्त भक्ति-भाव सर्हष अपनाना स्वीकार किया और युक्ति के अनुशीलन द्वारा अपनी सुरत को ''आत्मा में जो है परमात्मा'', उस संग जोड़ दिया। इस सन्दर्भ में सच्चेपातशाह जी को जो युक्ति मिली, वही युक्ति आपको भी मिली हुई है। सो इस युक्ति को अपनाकर आत्मज्ञान प्राप्त करो ताकि उसके सद्प्रभाव से जगतीय ज्ञान लोप हो जाए।

यह है सजनों बुराई पर अच्छाई की व असत्य पर सत्य की विजय। इस विजय को प्राप्त करने वाला अधर्मयुक्त आचरण छोड़कर धर्मसंगत आचरण करने के योग्य बनने के निमित्त सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के हुक्म व युक्ति अनुसार अपनी सुरत का नाता उनके

इष्ट संग जोड़ने में कामयाब हो जाता है। इस तरह वह फिर शब्द में अपनी सुरत को लीन रखते हुए हर आधि-व्याधि से मुक्त हो जाता है और सजनभाव का व्यवहार करने में निपुण हो जाता है। सजनभाव के व्यवहार से उसको अपने अन्दर शान्त, असीम शान्ति की प्रप्ति होती है जो अपने आप में संकल्प-रहित अवस्था यानि अफुर अवस्था को प्राप्त होने की बात होती है। अब जहाँ अफुरता होती है वहाँ अपना सत्य/अपनी यथार्थता समझ आ जाती है। ऐसा होने पर सुरत को यह ज्ञान हो जाता है कि मुझे मायाबद्ध करके जीव रूप में इस संसार में क्यों भेजा गया है। यहाँ जान लो कि सुरत चेतन होती है क्योंकि वह ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। सो अगर हम कहते हैं कि हम अपनी सुरत में हैं तो इसका मतलब यह होता है कि हमें कोई छल नहीं सकता क्योंकि हम चैतन्य हैं, सुचेत हैं व आत्मज्ञानी हैं। अब बताओ कि आत्मा में कौन है?

''परमात्मा''।

अगर परमात्मा है तो मैं आत्मा क्या हूँ? - मैं भी वही चेतन-शक्ति हूँ। उसकी चेतना से मेरा हृदय भरपूर है। वैसे भी चेतना से मेरे हृदय को भरपूर रखने के लिए कुदरत ने उसमें चार वेदों व छः शास्त्रों का प्रकाश किया है और इस तरह उस द्वारा परिपूर्ण आत्मिकज्ञान प्रदान करने की समुचित व्यवस्था मेरे अन्दर कायम कर रखी है। यह व्यवस्था सतयुग में सबके अन्दर होती है। जनचर, बनचर, जड़-चेतन सबके पास तब यह ज्ञान होता है और उन्हें पता होता है कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है और कुल सृष्टि के प्रति हमारा कर्त्तव्य क्या है? ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इस चराचर जगत की बनत भी पाँच तत्त्वों से बनती है। इस नाते उनके अन्दर भी तत्त्वज्ञान निहित होता है। इस तत्त्वज्ञान का बोध करना, अबोधता को दूर करने की बात होती है। इस बात को समझते हुए सजनों आपका अपने प्रति, अपने बच्चों के प्रति, कुल समाज के प्रति व कुल विश्व के प्रति कर्त्तव्य बनता है कि उनके वास्तविक तत्त्व का सही मायने में बोध कराने के लिए आप अपने जीवन के समय की कुर्बानी दिखाओ और इस कार्य के निमित्त स्वयं में स्वाभाविक परिवर्तन ले आओ। फिर द्वारे की नीति अनुरूप इस कार्य सिद्धि के निमित्त जो भी पुरुषार्थ आपने दिखाया, उसका मान-सम्मान खुद लेने के स्वभाव में मत ढलो। मानो कि यह तो मेरा कर्त्तव्य था जो मैंने किया। इस कर्त्तव्य की पालना के उपरान्त आपका सुकर्म आपके खाते में लिखा गया। अब उस किये हुए कर्म का आपको फल न मिले, इस हेतु जीवन में जो भी करो वह ईश्वर के हुक्म की पालना के निमित्त समर्पित भाव से ही करो।

जानो इसी तरह आज्ञाकारी सुपुत्र बन पाओगे। सजनों जब आपकी सुरत बनत बनाने वाले ईश्वर का कहना मानती है और चेतन अवस्था में सधी रहती है तो उसके कलेजे में ठण्ड पड़ जाती है। ठण्ड पड़ते ही सब ताप-संताप समाप्त हो जाते हैं और मन शान्त हो जाता है। मन शान्त तो हम शारीरिक-मानसिक यानि हर तरफ से तन्दुरुस्त हो जाते हैं। ऐसा होने पर हम मानसिक तौर पर एक-अवस्था में सधे रह सकते हैं और एकता के प्रतीक बन जाते हैं क्योंकि हमें इस बात का एहसास हो जाता है कि हम सब सुरतें समरूप हैं। समरूप हैं तो वैर-विरोध अपनाना हमें शोभा नहीं देता। अपनी शोभा तो विपरीत भाव-स्वभाव अपनाकर हम आप बिगाड़ते हैं। ऐसी सुरत फिर भाग्यहीन होकर वैसे ही दर-दर की ठोकरें खाती है जैसे कि घर की स्त्री बाहर निकलने पर खाती है। यह आप जानते ही होंगे कि शारीरिक रूप से चाहे कोई स्त्री हो या पुरुष, सब की सुरत स्त्री है। स्त्री रूपा सुरत जब घर में नहीं रहती और संसार में चली जाती है तो उस पर संसार का हर प्राणी झपट्टा मार कर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयास करता है। इस तरह से सब उस सुरत को भ्रमित अवस्था में ले जाकर अपने हाथों में उसकी लगाम ले लेते हैं और उसका दुरुपयोग करते हैं। देखा सजनों, अब जिस परमात्मा की सुरत को रानी व पटरानी बनकर यानि इलाही श्रृँगार पहनकर चरित्रवान व सुन्दरता का प्रतीक बनना था, वह अपना ही रूप स्वरूप बिगाड़ बैठती है और बनावटी व दिखावटी व्यवहार का चलन उसके द्वारा शुरु हो जाता है। इस तरह वह भटकी हुई सुरत ''काम'' को बढ़ावा देती है जिससे उसमें काम-आसक्ति बढ़ती है और उसे लगता है कि मेरे शारीरिक रूप को सब देखकर उसे सराहें और उसकी तरफ आकर्षित हों। आशय यह है कि शारीरिक भोगों ने आज हर मानव के मन को ऐसी दीन-हीन अवस्था में डाल दिया है कि वर्तमान युग में कोई विरला ही चरित्रवान नज़र आता है। यहाँ जान लो कि जो अपने ख़्याल में एक क्षण के लिए भी नकारात्मक सोचता है, वह अपने चरित्र पर आप दाग़ लगा रहा होता है। इसी तरह जो दिन-रात ही इसके विपरीत यानि सकारात्मक सोचता है वह चरित्रवान हो जाता है। कहने का आशय यह है कि केवल कुकर्म करने से ही कोई चरित्रहीन नहीं कहलाता अपितु बुरी सोच व बोल से भी इन्सान अपनी इज्ज़त आप ख़ाक में मिला बैठता है और चरित्रहीनता का प्रतीक कहलाता है। हम पूछते हैं कि जब हमारा घर आकाशों-आकाश है तो क्योंकर हम धरा/भू-लोक के होकर रह जाते हैं? क्योंकर इस सर्वश्रेष्ठ सिंहासन को छोड़कर हम भू-लोक के दुःखों में पड़े रहने में ही आनन्द समझते हैं। अब सजनों जिस कार्य के लिए यानि उद्धार के लिए सुरत को इस भू-लोक में भेजा गया है, अगर वह भू-लोक की ही होकर रह जाए तो यह अपने आप में ''मैं'' अहंकार में आने की बात होती है। ऐसी सुरत

को फिर लगता है कि मैं यह कर सकती हूँ, मैं वह कर सकती हूँ, किसी को भी बहकाकर कुरस्ते चढ़ा सकती हूँ, बड़े होने के नाते छोटों को सता सकती हूँ यानि मैं तो कुछ भी कर सकती हूँ। पर वह नहीं कर सकती जो ईश्वर ने मुझे करने के लिए इस भू-लोक में भेजा है। अरे भई जब यह नहीं कर सकती तो सुरत वापिस अपने सच्चे घर कैसे पहुँच सकती है। याद रखो अपना काम सम्पन्न करे बगैर कोई भी सुरत अपने सच्चे घर वापिस नहीं जा सकती। इसीलिए तो वह यहाँ भू-मण्डल में ही चौरासी लाख योनियों में चक्कर काटती रहती है। हम आपसे पूछते हैं कि क्या आपको जन्म-मरण की त्रास याद नहीं आती? क्या उसका भय या खौफ आपको नहीं सताता?

सजनों हर सुरत की इसी पीड़ा को देखते हुए ही आत्मिकज्ञान के पहलू से जन-जन को परिचित कराने का कार्यभार हर व्यक्ति को सौंपा है ताकि सब आत्मिक ज्ञान अपनाकर अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाएँ और एकता के प्रतीक बन जाएँ और विश्व में पुनः शान्ति स्थापित हो जाए। जानो ऐसा होने पर ही प्रभु का खेल सुचारू ढँग से चलेगा और सब अपनी वास्तविक शान को प्राप्त हो पाएँगे। ईश्वर के इस खेल को सुचारू ढँग से चलाने के निमित्त ही हमारा यह जीवन है यानि यह जीवन कोई बनावटी खेल खेलने के लिए नहीं है। जानो केवल भौतिक ज्ञान पढ़ने सुनने से कुछ नहीं होता। समझदारी में आने के लिए आत्मिकज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। अब ऐसे आत्म-विस्मृत को पुनः आत्म-स्मृति में लाकर अपने वास्तविक सर्वशक्तिमान स्वरूप की पहचान कराने के लिए कुदरत मदद पर आई हुई है। यह मदद सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित परमेश्वर की आज्ञाओं के रूप में सबके पास उपलब्ध है। इसीलिए इस कुदरती ग्रन्थ में विदित ब्रह्म विचारों को धारणे के लिए सबको बार-बार प्रेरित किया जा रहा है। जानो जो इस प्रदत्त प्रेरणा के बावज़ूद भी सावधान नहीं होता, वह अपने जन्म का आप वैरी है क्योंकि वह अपने साथ आप वैर कमा रहा है। आशय यह है कि मानव चोले के रूप में जो उसे जीवन बनाने का सुनहरी मौका मिला, वह उस मौके को गँवाकर खुद विनाश की ओर कदम बढ़ा रहा है क्योंकि वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों के मध्य स्थित ख़्याल को आत्मस्वरूप में साधकर नहीं रख पा रहा। इसी कारण तो वह अपने यथार्थ स्वरूप के साथ यानि जो आत्मा में परमात्मा है, उससे नहीं जुड़ पा रहा है। अब ख़्याल यदि उसका ज्ञानेन्द्रियों के बीच फँस जाता है तो वह संसार से सब कुछ धारण कर तद्नुकूल कर्म दर्शाता है। ऐसा करने से उसके अन्दर सुप्त अवस्था में छिपा ''काम'' जाग्रत हो जाता है। इसके विपरीत जिस इन्सान के पास

आत्मिकज्ञान होता है वहाँ ''काम'' जाग्रत होने की हिम्मत नहीं कर पाता। इस तरह आत्मिकज्ञान के होते विकारों का नाश हो जाता है। इस बात को समझते हुए ही ध्यान-कक्ष में आत्मिकज्ञान की कक्षाओं का प्रबन्ध किया गया है। अतः वहाँ जो पढ़ाया जाए उसे समझकर वैसे ही चलने का प्रयास करना। आपके अन्दर ऐसा करने की उत्कंठा जाग्रत हो उसके लिए आपको ध्यान-कक्ष यानि समभाव-समदृष्टि के स्कूल में तो निरन्तर आना ही पड़ेगा। अगर यह समय भी व्यर्थ गँवा दिया और घर बैठकर ही कक्षाएँ देखना उचित समझा तब घरेलू फुरने तो उस समय सतायेंगे ही सतायेंगे। फुरनों में जकड़ा ख़्याल इस तरह अफुर अवस्था को नहीं साध पायेगा। आप कुछ भी उत्तम नतीजा प्राप्त नहीं कर पाओगे। इसीलिए तो सजनों यहाँ ध्यान-कक्ष में सर्वप्रथम अफुरता में आने का आवाहन दिया जाता है। सो सजनों अगर लेशमात्र भी जीवन बनाने की ख़्वाहिश अन्दर रह गई है तो अपने जीवन को सकार्थ करने के लिए वसुन्धरा आओ और समभाव-समदृष्टि के स्कूल में दी जा रही आत्मिकज्ञान की विद्या को धारण करो। जानो हमारे पास बहुत व्यवस्था है, चाहे जितने भी आ जाओ। वैसे तो पन्द्रह दिन बाद आना कोई मुश्किल भी नहीं है। एक हफ्ते यहाँ क्लास पढ़ाई जाती है और दूसरे हफ्ते उस ज्ञान को मज़बूत करने के लिए दूसरी क्लास लगती है। तो यहाँ आकर अपना समय सकार्थ कर सकते हो। सत्संग में भी समय से दस मिनट पूर्व पहुँचना है। बाद में आकर सबको फुरना नहीं देना। अतः अपने साथ-साथ सबको सुसंस्कृत बनाने के लिए व अपनी खोई हुई शान को पुनः प्राप्त करने के लिए वास्तविक स्वभावों को जान-पहचान कर उनको प्रयोग करने की कला में निपुण बनो। अब आगे ध्यान से कीर्तन सुनोः-

महाबीर जी नूं भुल गई हम, जग विच रुल गई हम।।

मैं तां जग विच रुल गई हम, मैं तां जग विच रुल गई हम।

सोहणे चरणां नूं भुल गई हम, जग विच रुल गई हम।।

दोहेः-

पंजां तत्तां घबराया, जीव होया कमजोर।

असली धन डाकू लुट चले, साडे पकड़ो महाबीर चोर।।

कई जन्मां दी सुत्ती होई दासी, कष्ट उठाये हज़ार।

आके हुण जगाया, अंजनी लाल बलधार।।

आशा तृष्णा दी काली सर्पणी, ए दरख़्त दित्ता हाई जला।

महाबीर जी ने मेहर कीती, औषधि दित्ती ए पिला।।

तीनों ताप जलाया, त्रेह लगी बेशुमार।

महाबीर जी नाड़ी परख लई, ताप मिटाया बलधार।।

ताप लथा रघुनाथ मिले, दासी होई प्रसन्न।

रोग सारे मिट गये, मिल गये सूरज चन्द।।

ध्वनिः

धन बलधारी हिन हनुमान।

धन सीता माता धन धन श्री राम।।

सजनों कलुकाल के भाव-स्वभावों से उबरने हेतु और सतयुगी भाव-स्वभाव अपनाकर आत्म-स्मृति में आने का जो विधान इस कीर्तन में विदित है, वह वाकई में कुदरत का कमाल है। इस कीर्तन द्वारा सच्चेपातशाह जी बता रहे हैं कि जन्मोपरान्त माता-पिता, परिवारजन, समाज, संसारिक गुरुओं से प्राप्त अविचार ने हर जीव को अपने में उलझाकर सबका जीवन कठिन बना दिया है। सच्चेपातशाह जी इस सत्य को सबके सामने यानि पूरा विश्व/ब्रह्माण्ड के सामने स्वीकारते हुए कहते हैं कि इस कठिन अवस्था से सुगम अवस्था में आने का आधार स्त्रोत मात्र सजन श्री शहनशाह हनुमान जी हैं। इसीलिए वह कहते हैं कि हे सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ! आप सबसे श्रेष्ठ, सबसे विद्वान, सबसे गुणवान, सबसे बलवान, सबसे धनवान, सबसे बुद्धिमान, व सबसे ज्ञानवान हो। इसीलिए मेरी सुरत समर्पित भाव से आपको प्रणाम करती है। फिर वह अपनी हालत बताते हुए कहते हैं कि मेरा ख़्याल इस जगत में फैले हुए आडम्बरयुक्त आचरण के दुष्प्रभाव वश अज्ञानमय अवस्था को प्राप्त हो चुका है और मैं आत्म-विस्मृत हो इस अज्ञान के अधीन हो गई हूँ। इस तरह सच्चेपातशाह जी अपनी भूल को स्वीकारते हुए कहते हैं कि मैं अपने सम सुरतों के मार्गदर्शन में संसार में भटक गई हूँ व तीनों तापों से ग्रस्त हो गई हूँ। अब हे दाता, आप ही

मुझे रास्ता दिखाओ। फिर वह कहते हैं कि जब मैंने अपनी सुरत सजन श्री शहनशाह हनुमान जी को इस प्रकार समर्पित कर दी तो उन्होंने नाम-ध्यान रूपी औषधि बक्ष कर मुझे उसकी तीन ख़ुराकें प्रतिदिन लेने के लिए प्रेरित किया। साथ ही उन्होंने मुझे इस औषधि का युक्तिसंगत सेवन करने के नीति-नियम भी बताए। मैंने भी नित्त-नियम से उन ख़ुराकों का सेवन किया। ऐसा करने से मेरे अन्दर यह विश्वास सुदृढ़ हो गया कि सर्वगुण सम्पन्न सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के प्रति मुझे सदा समर्पित रहना है और उन्हीं के गुणों को धारना है। ऐसा करने से मुझे अपने अन्दर भरपूर आनन्द का अनुभव हुआ और मैं उनके गुणों को धारती-धारती आत्मज्ञानी बनने के प्रयास में आगे बढ़ने लगी यानि विचारयुक्त रास्ता अपने आप आगे खुलता गया और मुझे उससे लगाव हो गया। इस तरह आत्मज्ञान प्राप्तकर मेरी सुरत शान्त होती गई, होती गई। फिर सजनों सुरत को आत्मज्ञान प्राप्ति का रस पड़ गया। जब आत्मज्ञान प्राप्ति का रस पड़ गया तो अब संसार के ज्ञान की आवश्यकता ही कहाँ रह गई। सांसारिक ज्ञान से तो सुरत तीनों तापों से ग्रस्त हो जाती है। तीनों ताप क्या हैं? - आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक। इस तरह तीनों तरह का ज्ञान विस्मृत हो गया और सुरत को ''हौं-मैं'' का रोग लग गया व शारीरिक स्वभाव उस पर हावी हो गए। सजनों आपने देखा कि छोटी सी भूल कैसे विनाशकारी साबित होती है? कैसे वह हमें पूरी तरह से तोड़कर हमारा जीवन बर्बाद कर देती है? आज यही भूल हर मानव से हो रही है क्योंकि चारों तरफ से सुरत को घेरने के लिए तरह-तरह के प्रपन्च रचे पड़े हैं। सब कोई उसे अपने पीछे चलाने के लिए तत्पर है। पर यहाँ तो सजनो ऐसा कुछ नहीं है। यहाँ तो सब सम हैं। कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं अपितु सम अवस्था है। इसीलिए तो वह कहते हैः-

ताप लथा रघुनाथ मिले, दासी होई प्रसन्न

रोग सारे मिट गये, मिल गये सूरज चन्द

अर्थात अब सुरत को आध्यात्मिक ज्ञान भी हो गया, आधिभौतिक ज्ञान भी हो गया व आधिदैविक ज्ञान भी हो गया यानि उसे ज्ञात हो गया कि यह भौतिक व्यवस्था, दैविक व्यवस्था व अध्यात्म क्या है? इस तरह यह ज्ञान प्राप्तकर हम पूर्ण आत्मिकज्ञानी बन गए। जानो सजनों जब सुरत परिपूर्ण हो जाती है तो वह ब्रह्म कहलाती है क्योंकि वह अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाती है। यह है सजनों वास्तविक प्राप्ति। इस कीर्तन के माध्यम से

उन्होंने आत्म-स्मृति में आने की पूरी युक्ति आपको बता दी है ताकि आप ईश्वर के कर्त्तव्यपरायण सुपुत्र बन सको। आगे सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि जब आत्मपद प्राप्ति की युक्ति सजन श्री शहनशाह महाबीर जी ने हमें बक्षी तो हमें रघुनाथ जी का यानि आत्मा में जो है परमात्मा उसक साक्षात्कर हो गया। इस साक्षात्कार से हमें परम आनन्द की प्राप्ति हुई और हमें अपने यथार्थ स्वरूप का पता चल गया। तब हम परमार्थ स्वरूप हो जगत उद्धार हेतु जगत में विचरने में पूरी तरह सक्षम हो गए। ऐसा होने पर सत्संग का आरम्भ हुआ ताकि सब तक यह सन्देश जा सके और सबका उद्धार हो। कहने का आशय यह है कि उन्होंने केवल अपने तक ही सब कुछ सीमित नहीं रखा क्योंकि सब सुरतें समरूप हैं, सर्वव्यापक भगवान का ही अंश हैं। इस प्रकार उन्हें ईश्वर की सर्वव्यापकता समझ आ गई। सजनों यही बात आपने जन-जन तक पहुँचानी है। इस हेतु सबने आप भी तैयार होना है और अपने बच्चों को भी तैयार करना है। कोई भी इसमें कमज़ोरी न दिखाए अपितु इसके प्रति सबको बाध्य करें।

इसीलिए सजनों पन्द्रह तारीख को एक कार्यक्रम रखा गया है। तो उस समय कोई भी अपने बच्चों को घरों में मत रखना। अगर आप चाहते हो कि कुरस्ते पड़े हुए सजन सीधे रास्ते पर आ जाएँ तो हम उन्हें वहाँ सारा समझाएँगे ताकि वे बच्चे चरित्रवान अवस्था में सध जाएँ और परोपकारी प्रवृत्ति में ढल जाएँ। ऐसा न हो कि वे दिन रात सोचों में डूबे रहें व अपनी शारीरिक व्यवस्था कमज़ोर कर बैठें। जानो शरीर कमज़ोर हो जाए तो जीव भी कमज़ोर पड़ जाता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि यह साधन क्यों कमज़ोर पड़ जाता है? - क्योंकि जीव वास्तविक ज्ञान से भटक जाता है तभी तो यह साधन नकारात्मक विचार, दूषित आहार-विहार व व्यवहार के रहते स्वार्थपर हो कमज़ोर हो जाता है और फिर इन्सान कहलाने के काबिल ही नहीं रहता। यही कारण है कि आप अपने घर पैदा हुए बच्चे को उचित ज्ञान के अभाव में इन्सान से हैवान बना देते हो। सजनों हम आपसे पूछते हैं कि सत्संग में आने के बावज़ूद व सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के पास होते आपने क्योंकर यह नालायकी कर्म कमाया। इसीलिए औलाद नालायक हो गई। अब जब सब कुछ खुद किया तो रोते क्यों हो? फिर कह रहे हैं कि अपने साथ ऐसा मत होने दो। अब बताओ कि कीर्तन के अन्त में क्या कहा गया हैः-

धन बलधारी हिन हनुमान

धन सीता माता धन धन श्री राम

इन पंक्तियों में कितने पात्रों का जिक्र हुआ है?

'तीन'।

पहला पात्र कौन है?

'सजन श्री शहनशाह हनुमान जी'।

दूसरा पात्र कौन है?

'सीता माता'।

तीसरा पात्र कौन है?

'श्री राम'।

यहाँ जानो कि जो पहला पात्र है - सजन श्री शहनशाह हनुमान जी, वह आत्मज्ञान का स्वरूप है जिसे आत्म-स्वरूप या शब्द ब्रह्म भी कहते हैं। इसीलिए सुरत को जहाँ से आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है, निरन्तर वहीं उसे स्थित रखने का विधान रखा गया है। पहला युग यानि सतयुग में तो केवल आत्मज्ञान ही होता है परन्तु जब इन्सान के अन्दर संकल्प पैदा हो जाता है तो वह आत्म-विस्मृत होना आरम्भ हो जाता है। इसलिए उसके लिए आत्मिकज्ञान धारण करना आवश्यक हो जाता है। सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के साथ भी त्रेता युग में यही हुआ। इसीलिए तो जब भी वह दाता श्री राम जी के सम्मुख आए तो उन्हें वह आत्मज्ञान प्राप्त हो गया और वह अपनी शक्तियों को जान आत्मज्ञानी बन गए।

अब बताओ की दूसरा पात्र कौन है?

'सीता माता जी'।

अब सीता कौन है? - आपकी सुरत। अब सीता महारानी के पास आत्मज्ञान नहीं रहा तो उनकी बुद्धि को कौन हर कर ले गया? - मन रूपी रावण। तो आपकी सुरत के पास जब आत्मज्ञान नहीं होता तो उसको कौन हर लेता है? - दुष्टता का प्रतीक मन-गढ़ंत ज्ञान जो कि विभिन्न युगों में भिन्न-भिन्न मानवों द्वारा लिखा गया। अब ज्यों-ज्यों मानवों ने लिखना शुरु किया, त्यों-त्यों मानवता का विनाश होता गया और उस विनाश से उनका प्रभुत्व बन गया। अब प्रभुत्व तो अहंकार की निशानी होती है। इसी अहंकार के वशीभूत होकर इन्सान अपना शासन स्थापित करने के लिए ईश्वर के राज्य में दखल अन्दाज़ी करने की भूल कर बैठता है। पर अब सजनों पुनः ईश्वर का राज्य स्थापित होने जा रहा है। आप देख ही रहे हो कि विश्व में शान्ति स्थापित करने में सब असमर्थ हैं। अगर शान्ति स्थापित हो जाती है तो इनका प्रभुत्व अपने आप ही समाप्त हो जाएगा। जब वैश्विक-स्तर पर एकता आ गई तो कौन इनकी मानेगा। इसीलिए तो ये एकता होने ही नहीं देते। परन्तु अब यह खेल समाप्त होने वाला है।

अब समझ आया कि आत्मज्ञान प्राप्ति का स्त्रोत कहाँ है - वह है अजर-अमर सजन श्री शहनशाह हनुमान जी। वही अमर आत्मा हैं, आपका आत्म-स्वरूप हैं। अगर इस आत्म-स्वरूप में आपकी सुरत स्थित हो गई तो सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की तरह आप आत्मिक गुण से युक्त हो जाओगे यानि जब आपका ख़्याल शब्द में ठहर गया तो फिर दृष्टि किधर जाएगी? - दृष्टि में तब जो तीसरा पात्र है रघुनाथ जी, परमात्मा वह निगाह आ जाएँगे। इस तरह ताप-संताप मिट जाएँगे और दासी प्रसन्न हो जाएगी क्योंकि उसे परम आनन्द प्राप्त हो जाएगा।

अब तो समझ आ गया होगा कि ईश्वर अपना आप ही है। सारी खोज, सारा भटकाव, सारी निर्भरता यहाँ आकर समाप्त हो जाती है। अतः मानो कि मैं ही सर्वज्ञ हूँ, मैं ही सबके दिलों की जानता हूँ, मैं ही सर्वशक्तिमान हूँ। सर्वव्यापक एक ही भगवान है। सर्व एकात्मा के भाव में आकर सजनों एकरूप हो जाओ। फिर कोई भिन्नता नहीं रहेगी। आप सबके दिलों की जानने वाले हो जाओगे। यही सच्चेपातशाह जी ने किया और सबको/पूरे ब्रह्माण्ड को स्पष्ट कर दिया। ऐसा होने पर सारा ब्रह्माण्ड कोटि-कोटि नमन करते हुए कहने लगा कि हे ईश्वर आप धन्य हो, धन्य हो। इसलिए सजनों कहते हैं किः-

इस पदवी ते कोई मुश्किल जावे, जेहड़ी पदवी साजन जी ने पाई ए

शहनशाह ओ नगरी ऊपर, त्रिलोकी जैंदी शरणाई ए

हम आशा करते हैं कि आज की बात सबको समझ आई होगी। अगर ऐसा है तो फिर समुचित बातचीत को मनन द्वारा आचार में लाकर तद्नुकूल व्यवहार दर्शाना।

इन्हीं शब्दों के साथ जय सीताराम जी।